The Four
Sahibzadas
LANGUAGE HINDI

चार साहिबजादे

बड़े साहिबजादे

साहिबजादा अजीत सिंह

पौंटा साहिब में अपने प्रवास के दौरान, गुरु गोबिंद सिंग जी के सबसे बड़े साहिबजादे, साहिबजादा अजीत सिंग का जन्म 26 जनवरी 1887 को माता सुंदरी जी के गर्भ से हुआ था। अगले वर्ष, गुरु साहिब आनंदपुर साहिब लौट आए, जहां उन्होंने दैनिक सिख परंपरा का पालन करना शुरू किया।

बाबा अजीत सिंग ने सिख साहित्य, दर्शन और इतिहास के साथ-साथ घुड़सवारी, तलवारबाजी और तीरअन्दाजी जैसी कलाओं का अध्ययन किया। आप एक स्वस्थ, मजबूत, बुद्धिमान और जुझारू नेता बन गए ।

हर शाम आप अपने छोटे भाई जुझार सिंग को अपने साथ लेकर अपने दोस्तों को इकट्ठा करते और दो दस्ते बनाते । फिर आप दोनों टीमों के बीच तलवार-बाण से फर्जी लड़ाई किया करते थे। कभी-कभी गुरु साहिब भी अपने दोनों पुत्रों की इन सैन्य गतिविधियों को देखते।

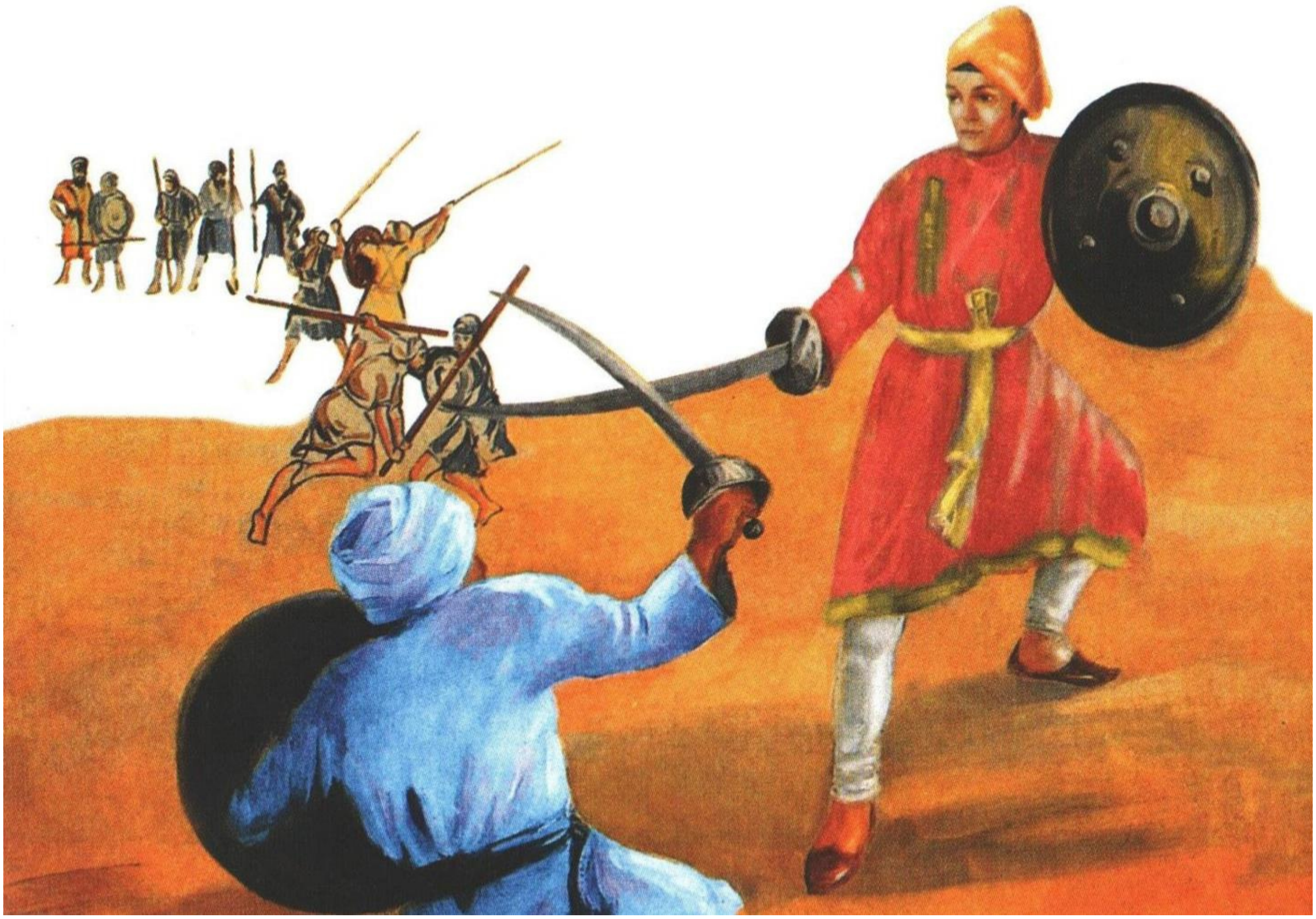

बाबा अजीत सिंग एक बहादुर और मजबूत योधा थे। उन्होंने कम उम्र में ही गुरु साहिब के युद्धों में भाग लेना शुरू कर दिया और कई बार उन्होंने इन युद्धों में वीरता के अद्भुत कारनामे दिखाए। कोई भी खतरा उन्हे अपना कर्तव्य निभाने से डरा या रोक नहीं सकता था।

1699 ई. बैसाखी के दिन, गुरु गोबिंद सिंग जी ने खालसा पंथ बनाया, जिसने आनंदपुर साहिब की पवित्र भूमि पर सिख समुदाय को एक नया रंग दिया। इससे सिख समुदाय में एक नई रूहानीयत पैदा हो गई। गुरु साहिब के दो साहिबजादों - बाबा अजीत सिंग और जुझार सिंग सहित हजारों श्रद्धालुओं ने 'खंडे दी पहुल' अपनाई।

खालसा पंथ की स्थापना के तुरंत बाद बाबा अजीत सिंग के कौतक की पहली परीक्षा हुई। रास्ते में पंजाब के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के पोथोहर से आनंदपुर साहिब के पास **नूह** गांव के **रंघड़ों** ने हमला **कर दिया और उन्हे लूट लिया**। गुरु गोबिंद सिंग जी ने बाबा अजीत सिंग को सतलुज नदी के उस पार उस गांव में आक्रमणकारियों को हराने के लिए भेजा। **13** मई **1699** को, बाबा अजीत सिंग केवल **12** वर्ष के थे जब वे **100** सिखों के एक समूह के साथ वहाँ गए और बदमाशों को दंडित करने के बाद संगत का सामान वापस ले आए।

अगले वर्ष, आप जी को एक महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। जब पहाड़ी राजाओं ने शाही सेना के साथ आनंदपुर पर हमला किया साहिबजादा अजीत सिंग को तारागढ़ किले की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गई, जो हमले का पहला निशाना था। एक विशेषज्ञ जोधे भाई उदय सिंग के साथ, आपने इस हमले को सफलतापूर्वक रोक दिया। यह 29 अगस्त 1700 ई. को हुआ था। इसके बाद आप जी ने अक्टूबर 1700 में निर्मोहगढ़ के युद्ध में भाग लिया।

15 मार्च 1701 को दड़प शहर (वर्तमान सियालकोट जिला) से आ **रही** सिख संगत को रास्ते में गुजरों और रंघड़ों ने लूट लिया। साहिबजादा अजीत सिंग ने उन्हें सुधारने का एक सफल प्रयास किया।

एक बार एक ब्राह्मण गुरु गोबिंद सिंग के पास आया और शिकायत की कि कुछ पठानों ने होशियारपुर के पास बस्ती में उसकी नवविवाहित पत्नी को अपने कब्जे में ले लिया है। गुरु साहिब के निर्देश पर साहिबजादा अजीत सिंग 100 घुड़सवारों के साथ वहाँ पहुँचे और ब्राह्मण की पत्नी को उनके कब्जे से मुक्त कराया। फिर उन्हें ब्राह्मणों के पास वापस लाया गया और पठानों को उसी के अनुसार दंडित किया गया। इस घटना की याद में अब बस्सी में इस स्थान पर गुरुद्वारा **है**।

गुरु गोबिंद सिंग द्वारा खालसा पंथ की स्थापना से सम्राट औरंगजेब बहुत ना-खुश था। **उसे** यह बर्दाश्त नहीं **हो रहा** था कि उसके राज्य में किसी को भी 'सच्चे पातशाह' के रूप में संबोधित किया जाए, जैसा कि सिख गुरु गोबिंद सिंग जी को करते थे। उसने अपने सेनापतियों को किसी भी कीमत पर गुरु दरबार के विस्तार को रोकने का आदेश दिया। सिखों को आनंदपुर से बाहर निकालने के लिए मुगल सेनापतियों ने हर हथकंडा अपनाना शुरू कर दिया।

5 मई 1705 में, पहाड़ी राजाओं और मुगल सैनिकों की एक संयुक्त सेना ने आनंदपुर की ओर कूच किया और शहर को घेर लिया। गुरु साहिब और उनके सिखों ने कई महीनों तक उनके द्वारा लगातार किये जा रहे हमलों का बहादुरी से सामना किया, भले ही इतने लंबे समय तक सभी रास्ते

बंद थे और सुविधाओं का भारी अभाव था। हमलावर भी अब तक थक चुके थे और उन्होंने गुरु साहिब और सिखों को आनंदपुर छोड़ने के लिए सुरक्षित मार्ग देने का वादा किया।

आनंदपुर साहिब पर हुई किलेबन्दी के इतने लम्बे समय तक साहिबजादा अजीत सिंग ने एक बार फिर अपनी वीरता और दृढ़ता के कौतक दिखाए । आखिरकार 5-6 दिसंबर 1705 की रात को जब उन्हें आनंदपुर छोड़ना था, तो उन्हें पीछे की तरफ चौकसी रखने के आदेश दिए गए । हमलावरों ने सुरक्षित रास्ता देने के अपने वादे को तोड़ते हुए उनके दस्ते पर हमला कर दिया, जिसका आप जी ने मौके पर ही बहादुरी से सामना किया। भाई उदय सिंग के आने और कमान संभालने तक उन्होने दुश्मन को भ्रमित रखा । तब भाई उदय सिंग ने अकेले ही दुश्मनों को मार गिराया । शहादत से पहले उस वीर योद्धा ने कई लोगों की जान ले ली। उस समय सरसा नदी में बाढ़ आ रही थी जब बाबा अजीत सिंग ने अपने पिता, अपने छोटे भाई जुझार सिंग और लगभग डेढ़ सौ सिंगों के साथ इसे पार किया। रोपड़ से आने वाली सेना की एक टुकड़ी के अचानक हमले के कारण सिखों की संख्या और कम हो गई और 6 दिसंबर 1705 को चालीस सिंगों की एक टुकड़ी ही चमकौर तक पहुंच सकी। वे वहाँ गए और एक कच्चे किले में बस गए। उनके पीछे मलेरकोटला और सरहिंद से सैन्य इकाइयाँ, और स्थानीय रंघड़ और गुजर आक्रमणकारी आए और उनके साथ जुड़ गए। उन सभी ने चमकौर के उस किले के चारों ओर से घेर लिया।

7 दिसंबर, 1705 की सुबह, एक बेमिसाल भयंकर युद्ध शुरू हुआ। गुरु गोबिंद सिंग जी द्वारा लिखित 'जफरनामा' के शब्दों में - केवल चालीस से लाख। जब सिख सैनिकों के पास गोला-बारूद और उपकरण खत्म हो गए, तो उन्होंने पाँच पाँच सिंगों का एक समूह बनाया और हमलावरों पर तलवार और भाले से हमला करने का फैसला किया।

पांच सिख सैनिकों के पहले जत्थे ने शहीद होने से पहले सैकड़ों मुगल सैनिकों को मार डाला। इसके बाद दूसरा और तीसरा जत्था भी बड़ी तेजी के साथ युद्ध के मैदान में गया। उन्होंने भी ऐसी कठिन परिस्थितियों में वीरता का प्रमाण देते हुए शहादत दी। गुरु साहिब किले से इस तीव्र युद्ध को स्पष्ट रूप से देख रहे थे और आगे की योजना बना रहे थे।

साहिबजादा अजीत सिंग ने आगे बढ़कर गुरु गोबिंद सिंग जी से मैदान-ए-जंग में जाकर लड़ने की अनुमति माँगी । गुरु साहिब ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनके नेतृत्व में सिख योद्धाओं के एक समूह को भेजा। जैसे ही युवा साहिबजादे और उनके साथी किले से बाहर आए, उनके द्वारा छोड़े गए 'सत श्री अकाल' के नारों की गूँज दूर तक गूँज उठी ।

मुगल सैनिकों ने साहिबजादे को चारों तरफ से घेर लिया। उन्होंने सभी को करड़े हाथों लिया और बाणों की तीव्र बौछार दी। घेराबंदी कर रहे सैनिकों को पीछे हटना पड़ा, लेकिन साथ ही अन्य सैनिक आगे आ गए। बाबा अजीत सिंग और उनके साथियों ने बहादुरी से सभी का सामना किया लेकिन उनके बाण खतम होने की कगार पर पहुँच गए। बाबा अजीत सिंग ने अपने घोड़े की गति तेज की और अपनी तलवार लहराते हुए शत्रु के बीच पहुँचे । एक दुश्मन सैनिक ने साहिबजादे को निशाना बनाया और भाले को जोर से मारा। हालांकि साहिबजादे ने उस हमले को रोक दिया, लेकिन उनका घोड़ा गंभीर रूप से घायल हो गया। नीचे उन्हें अकेला देख दुश्मन सैनिकों ने उन पर चारों तरफ से हमला कर दिया। इस प्रकार 19 वर्षीय साहिबजादा अजीत सिंग उस भीषण युद्ध में लड़ते हुए शहीद हो गए।

गुरुद्वारा कतलगढ़ साहिब को अब उस स्थान पर सजाया गया है जहां साहिबजादा अजीत सिंग, और फिर साहिबजादा जुझार सिंग, जो अगले समूह का नेतृत्व कर रहे थे, शहीद हो गए थे।

साहिबजादा जुझार सिंग

गुरु गोबिंद सिंग जी के दूसरे साहिबजादा, साहिबजादा जुझार सिंग का जन्म 14 मार्च 1691 को माता जीतो जी के गर्भ से आनंदपुर की पवित्र भूमि में हुआ था। अपने बड़े भाई साहिबजादा अजीत सिंग की तरह साहिबजादा जुझार सिंग ने भी धार्मिक साहित्य के साथ-साथ युद्ध कला भी सीखना शुरू कर दिया था। 1699 ई में, आप 8 वर्ष के थे, जब आपको खंडे बाटे का पहुल मिला।

दिसंबर 1705 में, जब आनंदपुर साहिब के चारों ओर दुश्मनों द्वारा भारी घेराबंदी के कारण किले को

खाली करना पड़ा, तो वह पंद्रह वर्ष का था और एक बहादुर युवा योद्धा बन गया था। हमलावर भारी संख्या में पीछा किए जाने और तमाम मुश्किलों के बावजूद उन्होंने और उनके जथे ने 6 दिसंबर 1705 की रात को सरसा नदी को पार किया और चमकौर पहुंचने में सफल रहे।

रात में आराम न करने के बावजूद, उन्होंने अगले दिन किले पर लगातार हमलों को बहादुरी से रोक कर रखा जिसमें गुरु गोबिंद सिंग जी, उनके चालीस सिंग और दो साहिबजादे साहिब तैनात थे। जब सिख सैनिको के पास गोला-बारूद और उपकरण खतम होने लगे, तो उन्होंने खुद को पाँच पाँच के समूहों में विभाजित कर लिया और बाहर जाकर हमलावरों से दो-दो हाथ करके लड़ने का फैसला किया।

गुरु गोबिंद सिंग जी अपने दोनो साहिबजादो को किले की सबसे ऊपरी मंजिल पर ले गए, जहां से युद्ध के मैदान का पूरा दृश्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दुश्मनो के हर हमले का सामना करने के लिए पूरी तैयारी कर ली गई थी। सिख सैनिकों ने अपनी अपनी कमान संभाल ली थी और दोनों साहिबजादे भी युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार थे।

हमलावरों की भारी ताकत की तुलना में सिंगों की गिनती चाहे बहुत कम थी, लेकिन उनके हौसले बहुत बुलंद थे। उन सभी के बीच गुरु गोबिंद सिंग जी की उपस्थिति उन्हें एक नया जीवन देती प्रतीत हुई। भगवान की कृपा से, वे दुश्मनों का सामना करने के लिए दृढ़ और साहस बनाए हुए थे। बहुत ही शांत और स्थिर भाव से खड़े होकर गुरु गोबिंद सिंग जी बहुत सावधानी से युद्ध की योजना बनाने में लगे थे ।

मैदान-ए-जंग में अपने बड़े भाई की अविश्वसनीय शहादत को देखकर साहिबजादा जुझार सिंग, जो उस समय केवल 15 वर्ष का था, ने आगे बढ़कर अपने गुरु पिता से अपने भाई के नक्शेकदम पर चलने की अनुमति माँगी ।

गुरु गोबिंद सिंग जी ने सत्य की उस लड़ाई में भाग लेने के लिए खुशी-खुशी अपने साहिबजादों को विदा किया। दुनिया के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जहां सत्य की खातिर, अन्याय के

खिलाफ, अत्याचारी शासकों के पैरों के नीचे पीड़ित लोगों को राहत देने के लिए ऐसी लड़ाई लड़ी गई हो।

7 दिसंबर 1705 को, साहिबजादा जुझार सिंग ने दिन के अंत में अंतिम बैच का नेतृत्व किया। वह अपने साथियों के साथ किले के द्वार से बाहर निकल गए और जैकारों की गूँज से दुश्मनों को वंगारा हर जगह "सत श्री अकाल" की गूँज फैल गई शत्रुओं के सैनिकों को आश्चर्य हुआ कि गुरु गोबिंद सिंग जी ने अपना दूसरे साहिबजादे को भी बलि देने के लिए भेज दिया था। बड़ी संख्या में शत्रु उनकी ओर दौड़ पड़े। साहिबजादा और उसके साथियों ने अपनी पूरी ताकत से उन सभी का बहादुरी से सामना किया। सूर्यास्त के समय साहिबजादा जुझार सिंग भी उस स्थान के पास शहीद हो गए जहां उनके बड़े भाई पहले शहीद हुऐ थे।

गुरु गोबिंद सिंग जी अपने दो साहिबजादों द्वारा दिखाए गए वीरतापूर्ण कार्यों और किले से दुश्मन के शिविर में उनके द्वारा डाली हुई भगदड़ को ध्यान से देख रहे थे। उनकी अविश्वसनीय शहादत को देखकर, गुरु साहिब ने कृतज्ञता के संकेत के रूप में अकाल पुरख के आगे शीस झुका दिया ।

छोटे साहिबजादे

साहिबजादा जोरावर सिंग

साहिबजादा फतेह सिंग

गुरु गोबिंद सिंह जी के तीसरे साहिबजादे, बाबा जोरावर सिंह का जन्म 17 नवंबर 1696 को आनंदपुर साहिब में माता जीतो जी के गर्भ से हुआ और वे केवल 9 वर्ष के थे जब 5-6 दिसंबर 1705 की रात को आनंदपुर के किले को खाली करना पड़ा।

5 दिसंबर 1700 में माता जीतो जी की मृत्यु के बाद, माता गुजरी जी (गुरु तेग बहादुर जी के महल) ने अपने पोते जोरावर सिंह और उनके छोटे भाई फतेह सिंह (जन्म 25 फरवरी 1699) की अच्छे से पालना की।

दोनों साहिबजादे उस समय माता गुजरी जी के साथ थे, जब वे सरसा नदी पार करते समय गुरु गोबिंद सिंह जी से अलग हो गए थे। माता गुजरी जी दोनों साहिबजादों के साथ घने जंगलों और कठिन इलाकों से गुजरीं। रास्ते में उन्हें कई जंगली जानवर भी मिले लेकिन दोनों साहिबजादे निडर दादी की संगत में गुरबानी का पाठ करते हुए जंगलो को पार कर गए। रास्ते में दादी उन दोनों को सिख इतिहास की चुनी हुई घटनाएँ सुनाती रही, जिससे सफर आसान हो गया।

उनका रसोइया, गंगू, जो बाढ़ की नदी को पार करने में सफल हो गया था, उन्हें मोरिंडा के पास अपने गाँव खेड़ी (अब सहेरी, जिला रोपड़) ले गया। उनके घोड़ों को बाँधते समय उसने देखा कि माताजी के पास एक गठड़ी में कुछ नकदी पड़ी है। देखते ही उसके मन में लालच आ गया। उसने न केवल रात में उस गठड़ी को चुरा लिया, बल्कि अपने अपराध को छिपाने और सरकार से इनाम की उम्मीद में उन्हें धोखा देने के बारे में भी सोचने लगा।

उसने सुना था कि सरहिंद के नवाब ने गुरु साहिब और उनके परिवार के सदस्यों को गिरफ्तार करने के लिए इनाम की घोषणा की थी। इस सब के चलते उसके मन में नवंद् चल रहा था, अपने घर मे गुरू जी के परिवारिक सद्स्यों को शरण देने के बारे मे पता लगने पर पकड़े जाने का डर और दूसरी तरफ इनाम का लालच। अंत मे वह लालच मे आ गया और मोरिंडा के अधिकारियों को अपने घर ले आया।

7 दिसंबर 1705 की सुबह, चमकौर के किले में लड़ाई वाले दिन, साहिबजादा जोरावर सिंह के साथ साहिबजादा फतेह सिंह और उनकी दादी माता गुजरीजी को मोरिंडा के अधिकारियों - जनी खान और मणि खान रंघड़ ने हिरासत में ले लिया। रात में उन्हें वहीं कोतवाली में रखा गया।

दोनों साहिबजादों को उनकी प्यारी दादी ने सिखों की बहादुरी की कहानियां सुनाईं, साथ ही गुरु अर्जन देव जी और गुरु तेग बहादुर जी की अविश्वसनीय शहादत के बारे में भी विस्तार से बताया। अगले दिन उन्हें सरहिंद भेजा गया जहाँ रास्ते में उन्हें देखने के लिए भारी भीड़ जमा हो गई

क्योंकि उनकी गिरफ्तारी की खबर दूर-दूर तक फैल गई थी। सभी लोग सोच रहे थे कि मासूम नन्हे साहिबजादों को उनकी पूज्य दादी के साथ गिरफ्तार क्यों किया गया। साहिबजादों के चेहरों पर निर्भयता के भाव देखकर सभी के मुंह से निकल रहा था ‘‘बहादर पिता के बहादर बच्चे ।

सरहिंद पहुँचने पर उन्हें किले के एक ठंडे बुर्ज में रखा गया था। जब गुरु साहिब के एक भक्त भाई मोती मेहरा को पता चला कि दोनों साहिबजादे को अपनी दादी के साथ ठंडे बुर्ज में भूखा रखा गया है तो उन्होंने शाही गुस्से की परवाह न करते हुए एक बड़ा जोखिम उठाया और छोटे साहिबजादों को ठंडे बुर्ज मे दूध पिलाकर ही लौटा। बाद में छोटे साहिबजादों को दूध पिलाने के लिए उनके पूरे परिवार को जीवित ही कोहलू में पीसकर शहीद कर दिया गया।

9 दिसंबर 1705 को दोनों साहिबजादों को सरहिंद के फौजदार नवाब वजीर खान के सामने पेश किया गया। वह अभी हाल ही में अपने एक सहयोगी मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद खान के साथ चमकौर से लौटा था। नवाब वजीर खाँन ने दोनो साहिबजादो को इसलाम धरम कबूल करने के लिए अमीरी और रूतबों के कई लालच दिए पर साहिबजादों ने सब ठुकरा दिया। उसने उन्हे जान से मारने की धमकी दी, लेकिन दोनों निडर रहे । अंत में मौत की सजा सुनाई गई। शेर खान ने इस

बात का कड़ा विरोध किया कि दो बच्चों को इतनी क्रूरता से नहीं मारा जा सकता और वजीर खान को ऐसा अमानवीय कृत्य करने से रोका ।
नवाब वज़ीर खान के मंत्रियों में से एक सुच्चा नंद ने अपनी वफादारी दिखाने और अपने मालिक को खुश करने के लिए बहुत ही ईर्ष्यालु सोच की। उन्होंने मांग की कि दोनों साहिबजादों को तुरंत मार दिया जाए और कहा, "साँप के बच्चे केवल साँप ही होते हैं। अंकुरित होने से पहले उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन शेर मुहम्मद खान के मासूम बच्चों की जान बख्शने को लेकर दिए गए हा के नारे कारन साहिबजादों को धर्म परिवर्तन के बारे में सोचने के लिए अधिक समय दिया गया।

साहिबजादा जोरावर सिंह और उनके छोटे भाई, साहिबजादा फतेह सिंह ने अपनी दादी की गर्म गोद में उस ठंडे बुर्ज में दो और ठंडी रातें बिताईं।

अगले दिन शाही दरबार में जाने से पहले माता गुजरी जी ने अपने दोनों साहिबजादों को गोद में लेकर उन्हें आशीर्वाद दिया और उन दोनों को गुरुओं द्वारा दिए गए पवित्र सिद्धांतों का पालन करने के लिए प्रेरित किया। साहिबजादों ने ऐसा ही करने का वादा किया और खुशी-खुशी अपनी दादी से विदाई ले ली। उन दोनों को फिर से नवाब के सामने पेश किया गया।

राज दरबार के द्वार पर पहुँचकर उसने देखा कि वहाँ का बड़ा द्वार बन्द था और प्रवेश के लिए केवल एक छोटा सा खिड़की जैसा द्वार खुला रखा गया था। दोनों साहिबजादों को तुरंत पता चल गया कि चाल चली जा रही है। उन्होने पहले तो अपने पैर दरवाजे के अंदर रखे और बिना सिर झुकाए उस छोटे से दरवाजे से कूद कर अंदर प्रवेश किया। दरबार में प्रवेश करते ही दोनों ने जोर से फतेह बुलाई:

वाहेगुरु जी का खालसा । वाहेगुरू जी की फतेह।

दरबार में बैठे सभी लोग उन दोनों की निडरता से बहुत प्रभावित हुए। नवाब वजीर खान ने फिर उन दोनों को फुसलाया कि वे जो कुछ भी कहेंगे, उन्हें दिया जाएगा अगर वे अपना धर्म बदल लें। यह सुनकर दोनों साहबजादे फौरन गरज उठे, "हमें किसी सांसारिक सुख-सुविधा की आवश्यकता नहीं है।" हम किसी भी कीमत पर अपना धर्म नहीं छोडेंगे।

नवाब ने उन्हें फिर समझाया और कहा, "तुम अभी छोटे और मासूम हो। अभी आपकी उमर खेलने और आनंद लेने की है। अगर आप हमारी सलाह मानेंगे तो आपको इस दुनिया के सारे सुख आपकी मर्जी से मिलेंगे और जन्नत में भी मजा आएगा।"

लेकिन दोनों छोटे साहिबजादे अपने धर्म की रक्षा के लिए हर कुर्बानी देने के लिऐ पूरी तरह से तैयार थे। साहिबजादा जोरावर सिंह ने साहसपूर्वक कहा, "हम अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ रहे हैं। हम गुरु गोविंद सिंह जी के पुत्र, गुरु तेग बहादुर जी के पोते और गुरु अर्जन देव जी के वारिस हैं। हम हमारे धर्म की रक्षा के लिए हर बलिदान देने के लिए तैयार हैं ।"

उसी समय दीवान सुच्चा नंद साहिबजादा के पास गए और कहा, "अगर तुम रिहा हो गए, तो तुम कहाँ जाओगे?

साहिबजादा जोरावर सिंह ने उत्तर दिया, "हम जंगलों में जाएंगे, कुछ सिखों को एक साथ इकट्ठा करेंगे, अच्छे घोड़ों की व्यवस्था करेंगे और फिर वापस आएंगे और युद्ध में आपका और आपकी सेना का सामना करेंगे।

दीवान सुच्चा नंद को यह जवाब सुनकर बड़ा झटका लगा और उन्होंने नवाब से कहा, "जनाब, ये दोनों बच्चे सरकार के खिलाफ बगावत करेंगे। इसलिए उन्हें अभी सजा मिलनी चाहिए और उन्हें रिहा नहीं किया जाना चाहिए।”

दोनों साहिबजादे बहुत खुश थे, एक-दूसरे के साथ खुलकर बात कर रहे थे और शाही दरबार की कार्यवाही के बारे में पूरी तरह से बेफिक्र थे। दरबार में मौजूद लोग इस बात से बहुत हैरान थे कि उन दोनों के चेहरे पर डर या आश्चर्य के भाव नहीं थे, क्योंकि यह उनके लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। लेकिन इन सबके बावजूद दोनों अडोल रहे और आखिरकार 11 दिसंबर 1705 को दोनों को जिंदा दीवारों मे चिनवाने का आदेश जारी कर दिया गया। सजा के बारे में सुनकर भले ही सभी

दरबारी हैरान रह गए, लेकिन दोनों साहिबजादो ने बिना किसी शिकन या व्याकुलता के इस सजा को सुना।

वहाँ मौजूद मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद खान ने, मौत की सजा के खिलाफ अपील की कि इतनी भारी सजा के लिए ये बच्चे अभी बहुत छोटे हैं और दोनों बच्चों को उनके पिता द्वारा किए गए किसी भी कृत्य के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए। फिर भी वज़ीर खान ने उनकी ओर से उठाई गई आपत्तियों को नज़र अंदाज कर दिया।

इसके बाद दोनों साहिबजादों को वापस बुर्ज भेज दिया गया। दोनों ने अपनी दादी को शाही दरबार में हुई कार्यवाही के बारे में बताया। दादी ने अपने पोते को गले लगाया और उनके द्वारा उठाए गए साहसिक कदम के लिए बधाई दी। साथ ही, उन्होंने साहिबजादों को प्रोत्साहित किया और कहा, "आप दोनों ने वास्तव में अपने सम्मानित दादा और बहादुर पिता के सम्मान को बरकरार रखा है।" भगवन तुम्हारे साथ रहे।

अगले दिन दोनों साहिबजादों को फिर से नवाब के दरबार में ले जाया गया। नवाब ने उन दोनों को एक बार फिर इस्लाम कबूल करने को कहा। दोनों साहिबजादों ने निडर होकर कहा, "हम अपने धर्म से कभी समझौता नहीं करेंगे। मौत का हमारे लिए कोई मतलब नहीं है।" उनका जवाब सुनकर नवाब बहुत हैरान हुए।

धर्म बदलने के लिए फिर मना करने से दोनो छोटे साहिबजादो को उस स्थान पर ले जाया गया जहाँ एक दीवार बनाई जा रही थी। उन दोनों को एक दूसरे के ठीक बगल में खड़ा किया गया था। वहाँ मौजूद काजी ने उनसे इस्लाम कबूल करने और इतनी जल्दी अपनी जिंदगी खत्म न करने का आग्रह किया। यहाँ तक कि जल्लादों ने भी उन्हें काजी की बात मानने को कहा लेकिन दोनों साहिबज़ादे साहब अपने फैसले पर पूरी तरह अडिग थे। उन दोनों ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया, "हम अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे।" मौत हमें डरा नहीं सकती।

इसके बाद दोनों ने गुरबाणी का पाठ करना शुरू कर दिया और दीवार में ईंटें लगनी शुरू होने लगीं। कहा जाता है कि जैसे ही दीवार उनके चेहरे पर पहुंची, वह गिर गई। हुआ यूं कि जो दीवार बन रही थी वह अचानक गिर गई और उसी समय दोनों साहिबजादे बेहोश हो गए। जब उन्हें होश आया तो उन्होंने एक बार फिर इस्लाम कबूल करने को कहा। इसलिए इनकार करने पर साहिबजादा जोरावर सिंह और साहिबजादा फतेह सिंह को शहीद कर दिया गया ।

बूढ़ी माँ गुजरी जी यह खबर मिलते ही चल बसी। अपने वीर पोतों के साथ-साथ दादी ने भी अतुलनीय शहादत दी। इस खबर से पूरे शहर में सनसनी फैल गई। इस घिनौनी हरकत से हर कोई हैरान था। हर कोई गुरु गोबिंद सिंह जी के दो छोटे पुत्रों के साहस और दृढ़ संकल्प की सराहना कर रहा था।

सरहिंद का एक धनी व्यापारी सेठ टोडर मल ने अगले दिन तीनों शवों का अंतिम संस्कार किया। इसके लिए नवाब इस शर्त पर राजी हो गया कि वह उस जगह के लिए भुगतान करेगा जहाँ संस्कार किया जाना है। यह निर्धारित किया गया था कि संस्कार के लिए जितनी जगह की आवश्यक्ता है, वह सोने की मुहरों से ढकी होनी चाहिए। सेठ टोडर माल ने उस जगह को चुना और उस पर सोने की मुहरें लगाकर उसे सुरक्षित कर लिया। गुरु गोबिंद सिंह जी के दो शहीद पुत्रों का अंतिम संस्कार उनकी दादी माँ के साथ पूरे सम्मान के साथ किया गया।

दुनिया के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें ऐसे नन्हे-मुन्नों ने शहादत हासिल की हो। साहिबजादा जोरावर सिंह उस समय केवल 8 वर्ष के थे और साहिबजादा फतेह सिंह की उम्र छह साल से कम थी । उन दोनों ने अत्याचारी सरकार के अन्याय के तहत दबने के बजाय दीवारों

में अंकित होना स्वीकार किया। वे दोनों अपने धर्म पर अडिग रहे। यहाँ तक कि जब उन दोनों को अलग-अलग खतरनाक सजाओ से धमकाया जा रहा था, तो दोनों ने साहसपूर्वक जवाब दिया, "शायद आप अभी तक हमारी समृद्ध विरासत के बारे में नहीं जानते हैं। हमारे गुरु-घर में किसी प्रकार की विपदा आने पर भी अपने धर्म में मजबूत रहने की परंपरा है।

यह घटना पुराने शहर सरहिंद के पास फतेहगढ़ साहिब में हुई। वर्तमान में इस स्थान पर चार गुरुधाम हैं। हर साल 25 से 28 दिसंबर तक इन शहीदों की पवित्र स्मृति में यहाँ जोड मेलों का आयोजन किया जाता है।

गुरु गोबिंद सिंह जी को राऐकोट मे नूरामाही ने छोटे साहिबजादों की शहादत की खबर दी। यह सुनकर उन्होंने अपने बाण से एक पौधे को उखाड़ दिया और घोषणा की कि यह अब भारत में मुगल साम्राज्य के अंत का कारण बनेगा। और उन्होने बादशाह औरंगजेब को लिखा; इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता कि एक सियार अपनी चालाकी और छल से दो शेर शावकों को मारने में कामयाब हो जाता है, क्योंकि बदला लेने के लिए शेर अभी भी जिंदा है।

साहिबजादों की शहादत की खबर से पूरे देश में विरोध की लहर फैल गई। क्योंकि सरहिंद के नवाब के आदेश से दोनों साहिबजादों को बेरहमी से शहीद कर दिया गया था, इसलिए सरहिंद उस समय सिखों के लिए आँखो का कांटा बन गया । नवंबर 1708 में, गुरु गोबिंद सिंह जी के नांदेड़ में ज्योति जोत समाने के बाद, बाबा बंदा सिंह बहादुर (1670-1716) के नेतृत्व में सिखों ने सरहिंद पर भारी हमला किया। 12 मई, 1710 को मुगल सेना को उखाड़ दिया और चप्पड़चिड़ी के मैदान में एक भीषण युद्ध में वजीर खान मारा गया। 14 मई को सिखों ने सरहिंद पर कब्जा कर लिया।

अपने चार साहिबजादों की इन शहादत का जिक्र करते हुए गुरु गोबिंद सिंह जी ने सिक्खों को संबोधित करते हुए कहा:

"इन पुतरन के सीस पर वार दिऐ सुत चार। चार मुइे तो क्या हुआ, जीवत कई हजार।

चार साहिबजादों की इन अविश्वसनीय शहादतों के कारण ही उन्हें सिखों द्वारा की जाने वाली प्रार्थनाओं में प्रतिदिन याद किया जाता है।